**ओ३म्**

**‘जीवात्मा वा मनुष्य की मृत्यु और परलोक’**

**-मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून।**

महाभारत के एक अंग भगवद्-गीता के दूसरे अध्याय में जन्म व मृत्यु विषयक वैदिक सिद्धान्त को बहुत सरल व स्पष्ट रूप से प्रतिपादित किया गया है। गीता के इस अध्याय में कुछ प्रसिद्ध श्लोकों में से 3 श्लोक प्रस्तुत हैं। यह तीन श्लोक गीता के दूसरे अध्याय में क्रमांक 22, 23 तथा 27 पर हैं जिन्हें प्रस्तुत कर रहे हैं। **‘वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृहणाति नरोऽपराणि। तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानि देही।।22।।’, ‘नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः। न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः।।23।।’ तथा ‘जातस्य हि धु्रवो मृत्युध्र्रुवं जन्म मृतस्य च। तस्मादपरिहार्येऽर्थे न त्वं शोचितुमर्हसि।।27।।’** इनका अर्थ है कि **मनुष्य जैसे पुराने वस्त्रों को छोड़कर नये वस्त्र धारण कर लेता है वैसे ही आत्मा पुराने शरीर को छोड़कर दूसरे नये शरीर में चली जाती है।** तेइसवें श्लोक में बताया गया है कि **शस्त्र इस आत्मा को काट नहीं सकते, अग्नि इसको जला नहीं सकती, जल इसको गीला नहीं कर सकता और वायु इसको सुखा नहीं सकती अर्थात् प्रत्येक स्थिति में यह आत्मा अपरिवर्तनीय रहती है।** सत्ताइसवें श्लोक का अर्थ है कि **पैदा हुए मनुष्य की मृत्यु अवश्य होगी और मरे हुए मनुष्य का जन्म अवश्य ही होगा। इस जन्म व मरण रूपी परिवर्तन के प्रवाह का निवारण नहीं हो सकता। अतः जन्म व मृत्यु होने पर मनुष्य को हर्ष व शोक नहीं करना चाहिये।** गीता के इन श्लोकों में जो ज्ञान दिया गया है वह जन्म व मृत्यु की यथार्थ स्थिति को प्रस्तुत कर रहा है। संसार में हम सर्वत्र इन कथनों का पालन होते हुए देख रहे हैं।

 संसार में हम प्रतिदिन मनुष्यों व अन्य प्राणियों के बच्चे व सन्तानों का जन्म होता हुआ देखते हैं। हम यह भी देखते हैं कि मानव व अन्य प्राणियों का शिशु समय के अनुसार बालक, किशोर, युवा, प्रौढ़ व वृद्ध होता है। वृद्धावस्था भी स्थाई नहीं होती। कुछ वर्षों बाद रोग व दुर्घटना आदि कोई कारण बन जाता है और मृत्यु हो जाती है। मृत्यु के समय हम मृतक के लिये शोक वा दुःख व्यक्त करते हैं और उसकी आत्मा की शान्ति व सद्गति के लिए प्रार्थना करते हैं। ऐसा प्रायः सभी मतों व धर्मों के लोग करते हैं। जो लोग ईश्वर व आत्मा के पृथक अस्तित्व को नहीं मानते, वह भी मृत्यु होने पर दुःखी होते हैं। इसका कारण यह है कि मनुष्य व उसके परिजन नहीं चाहते कि उनमें से किसी की मृत्यु हो। हां, रोग आदि होने व अधिक समय तक स्वस्थ होने के स्थान पर अस्वस्थता के विकराल हो जाने पर अवश्य ही लोग विवशता में यह कहते हैं कि यदि इसकी मृत्यु हो जाये तो यह इन दुःखों से छूट सकता है। इन सब पर विचार करने से यह विदित होता है कि जिन लोगों के परस्पर परिचय व सम्बन्ध होते हैं उनमें एक दूसरे के प्रति प्रेम व मोह उत्पन्न हो जाता है। मिलने पर सुख का अनुभव होता है व अलग होने पर दुःख होता है चाहे यह वियोग दोनों के जीवित होने पर ही हो अर्थात् एक दूसरे से कुछ समय के लिए दूर जाने से हो। स्थाई रूप से वियोग अर्थात् मृत्यु का दुःख अधिक होता है। मृत्यु के समय पर हमारे प्रिय जन का भौतिक शरीर तो हमारे ही पास रहता है परन्तु उस शरीर में स्थित एक चेतन तत्व जीवात्मा के न रहने पर उसका शरीर निश्चेष्ट हो जाता है। शरीर के प्रति यद्यपि प्रियजनों को यह विश्वास होता है कि जिस व्यक्ति व पदार्थ से उनका प्रेम सम्बन्ध था वह यह शरीर नहीं, वह इससे भिन्न अन्य कोई था जो अब इसमें नहीं है और यह शरीर उसके न रहने से अब उनके किसी काम का नहीं है। शरीर से कुछ समय बाद दुर्गन्ध उत्पन्न होने लगती है जिसको अपने से दूर करना ही होता है। पर्यावरण प्रदुषण आरम्भ हो जाता है जिसके रोकने के लिए सर्वोत्तम उपाय उसका गोघृत, केसर व कस्तूरी व वनौषधि आदि सुगन्धित पदार्थों से उसे काष्ठ की चिता में जलाकर पंचतत्वों में विलीन किया जाता है। बहुत से लोग इस सर्वोत्तम प्रक्रिया को तत्वतः व यथार्थतः नहीं जानतेख् अतः वह अन्य प्रकार से अन्त्येष्टि करते हैं जिसमें उनकी कुछ साम्प्रदायिक भावनाये व अज्ञान भी होता है। अब प्रश्न यह है कि शरीर से चेतन जीवात्मा कैसे निकलती है व कहां जाती है?

 इस प्रश्न का उत्तर जानने के लिए वैदिक ज्ञान के प्राचीनतम व प्रमाणिक होने के साथ ही यह हमारा सहायक होता है। वैदिक ज्ञान के अनुसार यह समस्त संसार सत्व, रज व तम गुणों वाली अति सूक्ष्म मूल जड़ प्रकृति का विकार है जिसे ईश्वर अस्तित्व में लाता है। सृष्टि की रचना का कारण जीवों के पूर्वजन्मों के कर्म होते हैं जिनका भोग करना जीवात्माओं के लिए शेष रहता है। इन भोग करने वाले कर्मों के अनुसार ही ईश्वर जीवात्माओं को नाना प्रकार की योनियों में जन्म देता है। जिन-जिन योनियों में जिसको जन्म मिलता है, उन-उन योनियों में रहकर जीवात्मा अपने पूर्वजन्मों के कर्मों का भोग करते हैं। भोग करने के बाद मृत्यु आने पर जो कर्म भोग करने के लिए शेष रह जाते हैं उनके अनुसार फिर नया जन्म होता है। मनुष्य योनि एकमात्र ऐसी योनि है जिसमें मनुष्य पूर्वजन्मों के कर्मों को भोगता भी है और नये शुभ व अशुभ कर्मों को करके उनका संचय कर आत्मा की उन्नति व अवनति करता है। इसे इस प्रकार भी समझ सकते हैं कि धर्मात्मा मनुष्य जन्म में आत्मा की उन्नति करते हैं और धर्महीन लोग अवनति कर दुःखों के भागी बन परजन्मों में दुःखों को भोगते हैं। जीवात्मा को मनुष्य जन्म में यह सुविधा भी दी गई है कि वह ईश्वरीय ज्ञान वेदों का अध्ययन करे, वेद विहित कर्मों ब्रह्मचर्य पालन, ईश्वरोपासना अर्थात् ईश्वर के गुणों का ध्यान व चिन्तन, यज्ञादि कर्म, माता-पिता-आचार्य आदि की सेवा व सत्कार, सभी प्राणियों के प्रति दया, हिंसा का पूर्ण त्याग, समाज व देश का उपकार आदि कार्य करे। यह सभी कर्म मनुष्य को बार-बार के जन्म व मृत्यु के चक्र से छुड़ाकर मोक्ष प्राप्ति में सहायक होते हैं। मोक्ष को प्राप्त जीवात्मा को अन्य जीवात्माओं की तरह बार-बार जन्म व बार-बार मरण की स्थिति से नहीं गुजरना पड़ता। मोक्ष की यह अवधि 31 नील 10 खरब 40 अरब वर्षों की होती है। यह मोक्ष की अवस्था भी जीवात्मा का श्रेष्ठतम परलोक है। जिन जीवात्माओं के मनुष्य जन्म में वेद व वैदिक मान्यताओं के अनुसार श्रेष्ठ कर्म नहीं होते उनकी गीता के श्लोकों के अनुसार पुर्नजन्म होता है। मृत्यु के बाद जीवात्मा की आकाश व वायुमण्डल में स्थिति, उसके बाद पिता व माता के शरीरों में प्रवेश, गर्भावस्था में शरीर के निर्माण के बाद जन्म व जन्म से आगे मृत्यु का समय किसी भी जीवात्मा का परजन्म व परलोक होता है। हम इस संसार में मनुष्यों की सुख-दुःख व सुविधा व असुविधाओं सहित शरीर के सौन्दर्य व शक्तियों के अनुसार भिन्न-भिन्न स्थितियों को देखते हैं। इनमें से कुछ संसार व समाज निर्णीत हैं और कुछ ईश्वर द्वारा निर्धारित हैं। ईश्वर व संसार द्वारा निर्धारित हमारी परिस्थितियां ही हमारे पूर्वजन्म का परजन्म या परलोक है। जिस प्रकार हमारा यह जन्म व स्थिति हमारे पूर्वजन्म का परलोक है उसी प्रकार से हमारा अगला जन्म इस जन्म के कर्मानुसार श्रेष्ठ व निम्न मनुष्य योनि व गो आदि वा सर्प आदि योनियों में भी हो सकता है। यही हमारे इस जन्म का परलोक होगा।

 मुक्ति भी जीवात्मा का परलोक ही होती है। मुक्ति विषयक महर्षि दयानन्द के यथार्थ विचार प्रस्तुत कर रहे हैं। (प्रश्न) मुक्ति किस को कहते हैं? (उत्तर) जिस में छूट जाना हो उस का नाम मुक्ति है। (प्रश्न) किस से छूट जाना? (उत्तर) जिससे छूटने की इच्छा सब जीव करते हैं। (प्रश्न) किससे छूटना चाहते हैं? (उत्तर) दुःख से। (प्रश्न) छूट कर किस को प्राप्त होते हैं और कहां रहते हैं? (उत्तर) सुख को प्राप्त होते और ब्रह्म में रहते हैं। (प्रश्न) मुक्ति और बन्धन किन किन बातों से होता है? (उत्तर) परमेश्वर की आज्ञा पालने, अधर्म, अविद्या, कुसंग, कुसंस्कार, बुरे व्यसनों से अलग रहने, और सत्यभाषण, परोपकार, विद्या, पक्षपातरहित न्याय, धर्म की वृद्धि करने, वैदिक पद्धति के अनुसार परमेश्वर की स्तुति, प्रार्थना और उपासना अर्थात् योगाभ्यास करने, विद्या पढ़ने-पढ़ाने और धर्म से पुरुषार्थ कर ज्ञान की उन्नति करने, सब से उत्तम साधनों को करने और जो कुछ करे वह सब पक्षपातरहित न्यायधर्मानुसार ही करे, इत्यादि साधनों से मुक्ति और इनसे विपरीत ईश्वर की आज्ञा भंग करने आदि काम से बन्ध अर्थात् जन्म-मरण रूपी बन्धन होता है। (प्रश्न) मुक्ति में जीव का लय होता है वा विद्यमान रहता है? (उत्तर) विद्यमान रहता है। (प्रश्न) कहां रहता है? (उत्तर) ब्रह्म में। (प्रश्न) ब्रह्म कहां है और वह मुक्त जीव एक ठिकाने रहता है वा स्वेच्छाचाचरी होकर सर्वत्र विचरता है? (उत्तर) जो ब्रह्म सर्वत्र पूर्ण है, उसी में मुक्तजीव अव्याहतगति अर्थात् उस को कहीं रुकावट नहीं, विज्ञान, आनन्द पूर्वक स्वतन्त्र विचरता है। (प्रश्न) मुक्त जीव का स्थूल शरीर रहता है वा नहीं? (उत्तर) नहीं रहता। (प्रश्न) फिर वह सुख और आनन्द का कैसे भोग करता है? (उत्तर) उसके सत्य संकल्पादि स्वाभाविक गुण, सामथ्र्य सब रहते हैं, भौतिक संग नहीं रहता, उनसे भोग करता है।

 मोक्ष में भौतिक शरीर वा इन्द्रियों के गोलक जीवात्मा के साथ नहीं रहते किन्तु अपने स्वाभाविक शुद्ध गुण रहते हैं। जब सुनना चाहता है तब श्रोत्र, स्पर्श करना चाहता है तब त्वचा, देखने के संकल्प से चक्षु, स्वाद के अर्थ रसना, गंध के लिये घ्राण, संकल्प-विकल्प करते समय मन, निश्चय करने के लिये बुद्धि, स्मरण करने के लिये चित्त और अहंकार के अर्थ अहंकाररूप अपनी स्वशक्ति से जीवात्मा मुक्ति में हो जाता है और संकल्पमात्र शरीर होता है। जैसे शरीर के आधार रहकर इन्द्रियों के गोलक के द्वारा जीव स्वकार्य करता है वैसे अपनी शक्ति से मुक्ति में सब आनन्द भोग लेता है। (प्रश्न) उस की शक्ति कितने प्रकार की और कितनी है? (उत्तर) मुख्य एक प्रकार की शक्ति है, परन्तु बल, पराक्रम, आकर्षण, प्रेरणा, गति, भीषण, विवेचन, क्रिया, उत्साह, स्मरण, निश्चय, इच्छा, प्रेम, द्वेष, संयोग, विभाग, संयोजक, विभाजक, श्रवण, स्पर्शन, दर्शन, स्वादन और गंध ग्रहण तथा ज्ञान इन 24 चैबीस प्रकार के सामथ्र्ययुक्त जीव हैं। इन शक्तियों से मुक्ति में भी आनन्द की प्राप्ति व भोग करता है। जो मुक्ति में जीवात्मा का लय होता तो मुक्ति का सुख कौन भोगता? और जो जीव के नाश ही को मुक्ति समझते हैं वे तो महामूढ़ हैं क्योंकि मुक्ति जीव की यह है कि दुःखों से छूट कर आनन्द स्वरूप सर्वव्यापक अनन्त परमेश्वर में जीव का आनन्द में रहना।

 मुत्यु और परलोक का संक्षिप्त विवरण हमने प्रस्तुत किया है। विस्तार से जानने के लिए सत्यार्थप्रकाश का नवम समुल्लास द्रष्टव्य है। महर्षि दयानन्द वेदों व वैदिक साहित्य के महान ज्ञाता-विद्वान और योग की सिद्धि ब्रह्म वा ईश्वर साक्षात्कार को प्राप्त योगी थे। हमारा ज्ञान व अनुभव उनसे बहुत निम्न व अनेकानेक भ्राान्तियों से युक्त है। जिस प्रकार हम ज्ञान व विज्ञान में प्रमाणित विद्वानों की पुस्तकों पर विश्वास करते हैं उसी प्रकार हमें महर्षि दयानन्द के वचनों के अनुसंधान युक्त वा स्वानुभूत होने पर भी विश्वास करना चाहिये। उन्होंने केवल भाषण व ग्रन्थ ही नहीं लिखे अपितु अपनी समस्त शिक्षाओं को अपने जीवन में चरितार्थ भी कर दिखाया था। अतः मानवता के आदर्श महर्षि दयानन्द के मार्ग व शिक्षाओं को यदि हम अपनायेंगे तो लाभ में रहेंगे अन्यथा वर्तमान व भावी जन्मों में दुःखों से बच नहीं सकते। इसी के साथ इस लेख को विराम देते हैं।

 **-मनमोहन कुमार आर्य**

**पताः 196 चुक्खूवाला-2**

**देहरादून-248001**

**फोनः09412985121**